वेदान्त आश्रम की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

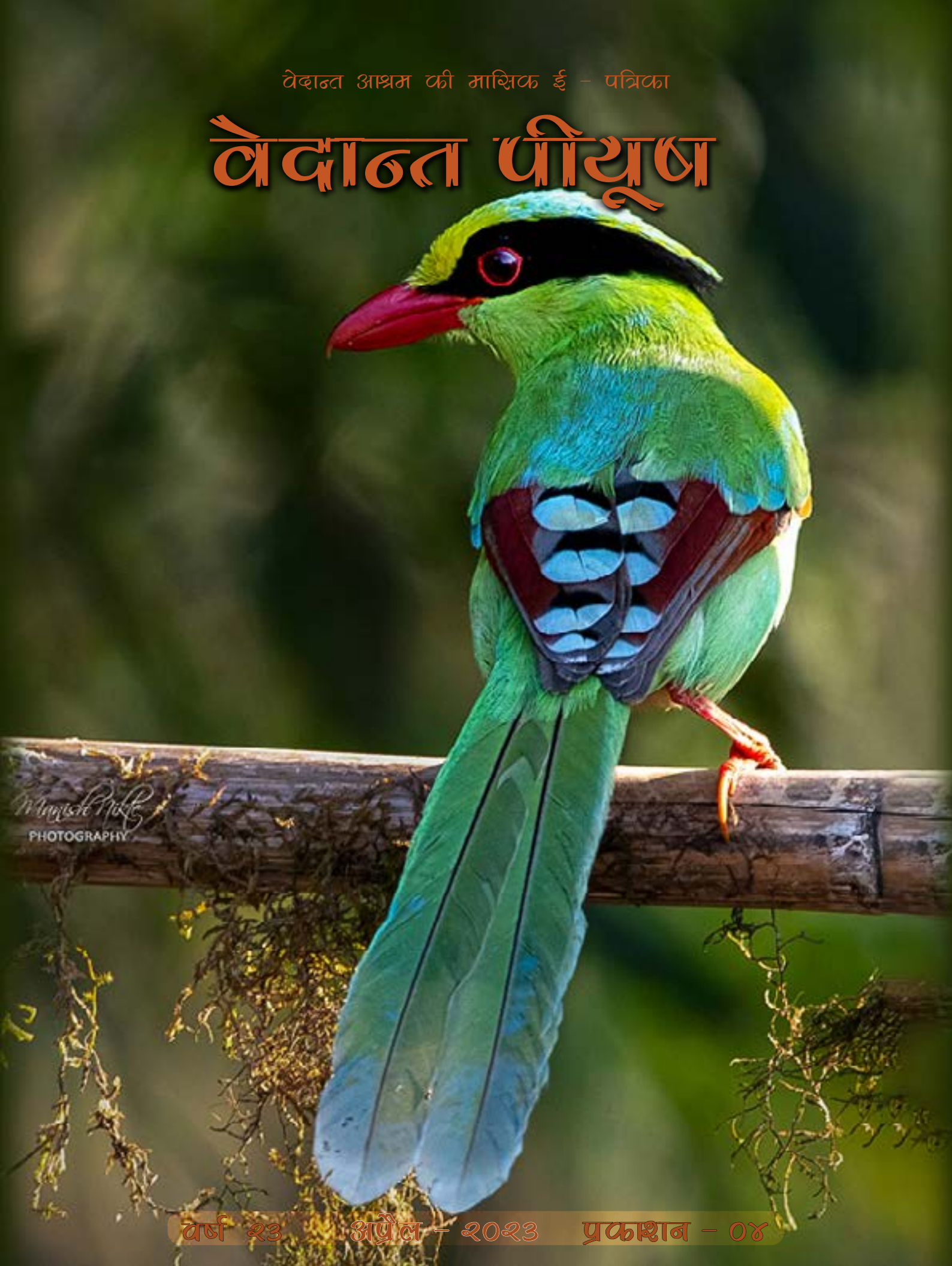

वर्ष २३ अप्रैल - २०२३ प्रकाशन - ०४

वेदान्त पीयूष

वेदान्त मिशन की मासिक हिन्दी मासिक पत्रिका

अप्रैल 2023 / वर्ष 23 / प्रकाशन 04

प्रकाशक

वेदान्त आश्रम,

ई - २९५०, सुदामा नगर, इन्दौर - ४५२००९; मध्यप्रदेश

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

विषय सूचि

04 श्लोक – आत्मबोध

06 सन्देश – पूज्य गुरुजी

10 लेख – स्वा. अमितानन्दजी

14 लघुवाक्यवृत्ति (ग्रन्थ)

18 गीता और मानव जीवन
(पू. स्वामी विदितात्मानन्दजी)

22 जीवन्मुक्त (पू. स्वामी तपोवन)

26 मनु और शतरूपा
(राम चरित मानस आधारित)

29 कथा – विदुषी मैत्रेयी

32 समाचार (मिशन / आश्रम)

48 कार्यक्रम (मिशन / आश्रम)

49 समाचार (इण्टरनेट / लिंक)

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वक्रियार्थेषु वर्तन्ते सूर्यलोकं यथा जनाः।।

आत्मचैतन्य का आश्रय लेकर जड़ होते हुए भी देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि उसी प्रकार से अपनी अपनी क्रियाएं करती है, जैसे सूर्य की सन्निधि में समस्त मनुष्य अपने कर्म में प्रेरित होते है।।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

ततो न विजुगुप्सते

ततो न विजुगुप्सते

ईशावास्य उपनिषद् बताता है कि, जो सब को अपनी आत्मा में तथा सब में अपनी आत्मा को देखता है, वह 'ततो न विजुगुप्सते' अर्थात् वह कभी भी, किसी से भी घृणा नहीं करता है। समस्त शास्त्रों का उद्घोष है कि जगत में समस्त भेद नाम-रूप और उसकी विशिष्टता की वजह से ही है। तत्त्वतः सब ब्रह्मस्वरूप ही है। इस एकत्व के ज्ञान से ही मनुष्य के समस्त सांसारिक क्लेश तथा रागादि विकार की समाप्ति होती है। मूलरूप से सब एक ही तत्त्व होने से प्रत्येक व्यक्ति साधारणतः अन्य में एकता का सूत्र खोजता है। जहां पर भी एकता का सूत्र दीख जाता है, उसके प्रति अपनापन, आत्मयीता और स्नेह का भाव प्रकट होता है। जिस प्रकार अपने ही शरीर के विविध हाथ, पैर, मस्तक आदि अंग है। उन सब में उपर से नाम-रूप वह कार्य में भेद होते हुए भी सब में यह 'मैं ही हूं' इस एकता के सूत्र को देखते है। अतः किसी भी अंग में न उत्कृष्ट, न निकृष्ट होने का आरोपण होता है। सब के में आत्मीयता से यथावत् स्वीकृति होती है।

एकत्व का ज्ञान व दृष्टि विविध स्तरों पर होता है। जो जिस धरातल पर खड़ा है और उसके लिए जिसका महत्व है, उस धरातल पर एकता का सूत्र खोजने की चेष्टा करता है। जैसे कुल, देश, जाति, धर्म इत्यादि ध रातल पर। जिस समय अपने आपको देहादि उपाधि से युक्त देख कर उसे ही अपनी सच्चाई मान ली जाती है तब हम विविध स्तर के भेदों को स्वतः ही जन्म दे देते हैं। देह की दृष्टि से किसी देश के वासी हैं, किसी जाति से युक्त, किसी धर्म व सम्प्रदाय से युक्त हैं। कार्य की दृष्टि से कोई न कोई कार्यक्षेत्र, बुद्धि की दृष्टि से ज्ञान का क्षेत्र हुआ करता है। हम उस स्तर पर ही एकता के सूत्र को खोजते रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य एकता का सूत्र तो खोजता है, पर उस प्रक्रिया में और भी विभाजन और गुटबाजी को जन्म देता जाता है। इससे समाज में और भी तनाव और अशान्ति की समस्याएं पैदा होती हैं। यदि एकता के वास्तविक सूत्र को देखा जाय जो बिना किसी जाति, समाज, धर्म आदि समस्त भेद के सब को समान रूप से पिरोये हुए हो, तो यह एक मात्र आत्मा की दृष्टि से ही हो सकता है।

ततो न विजुगुप्सते

जैसे समुद्र में अनेकों छोटी बड़ी लहरें विराजमान हैं। प्रत्येक लहर की अपने नाम-रूप की दृष्टि से कोई विशेषता है। यदि इस नाम-रूप को महत्व प्रदान किया जाय तो समुद्र में तत्क्षण खण्ड दिखने लगते हैं। किन्तु एक स्तर ऐसा भी है जहां समस्त विशेषताओं से रहित एकता का सूत्र सहज रूप से दिखता है। यह है उसके तत्त्व का धरातल, जल। जल समस्त लहरों को समान रूप से व्याप्त करता है। यह ही प्रत्येक लहरों का सत्य है, जिसकी वजह से न केवल लहर का ही अस्तित्व है किन्तु पूरे समुद्र का भी अस्तित्व इसी के उपर निर्भर है। लहर आदि के नाम-रूप में सतत परिवर्तन हो रहा है, काल के अन्तर्गत वह उत्पन्न हुआ है और काल विशेष में वह समाप्त हो जाएगा। पर जल इसका ऐसा धरातल है जिसमें कोई परिवर्तन नहीं है और न ही इन लहरादि नाम-रूपों की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न होता है। जब एक लहर इस निश्चय से युक्त हो जाए कि हम जल तत्त्व ही है, तब जल की दृष्टि से वह समुद्रादि सब को अपने में समाए हुए है। जल तत्त्व स्वयं भी सब में समाया हुआ है।

उसी प्रकार जब आत्मा और देहादि रूप अनात्मा का विवेक करके यह निश्चय किया जाय कि यह देहादि उपाधि मिथ्या है। उन सब का सत्य उसे धारण करने वाली सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा ही है। वह ही समस्त जड़ चेतन आदि में सत्ता की तरह विराजमान सब को स्फूर्ति प्रदान कर रहा है। तब यह बात ज्ञान की दृष्टि से दिखती है कि यह ही हम सब की आत्मा है, तथा सब का अस्तित्व मुझ चेतन सत्ता की वजह से ही है। यह एक अखण्डता का ज्ञान है। इस स्तर पर कोई भेद की सम्भावना नहीं है। जैसे हम अपने आपके प्रति न द्वेष करते हैं और न ही घृणा। अतः सब की हम ही आत्मा होने की वजह से द्वेष वा घृणा का कोई अवकाश नहीं रहता है।

यद्यपि व्यवहार औपाधिक विशेषताओं के धरातल पर, गुण-कर्म को ध्यान में रखकर ही होता है, इन समस्त व्यवहार के बावजूद भी इन सबकी गहराई में यह समझ विद्यमान है कि हम ही सब की आत्मा की तरह से हैं। अतः 'ततो न विजुगप्सते।'

यज्ञ, दान और तप - यह तीन धर्म के आधारस्तम्भ है।

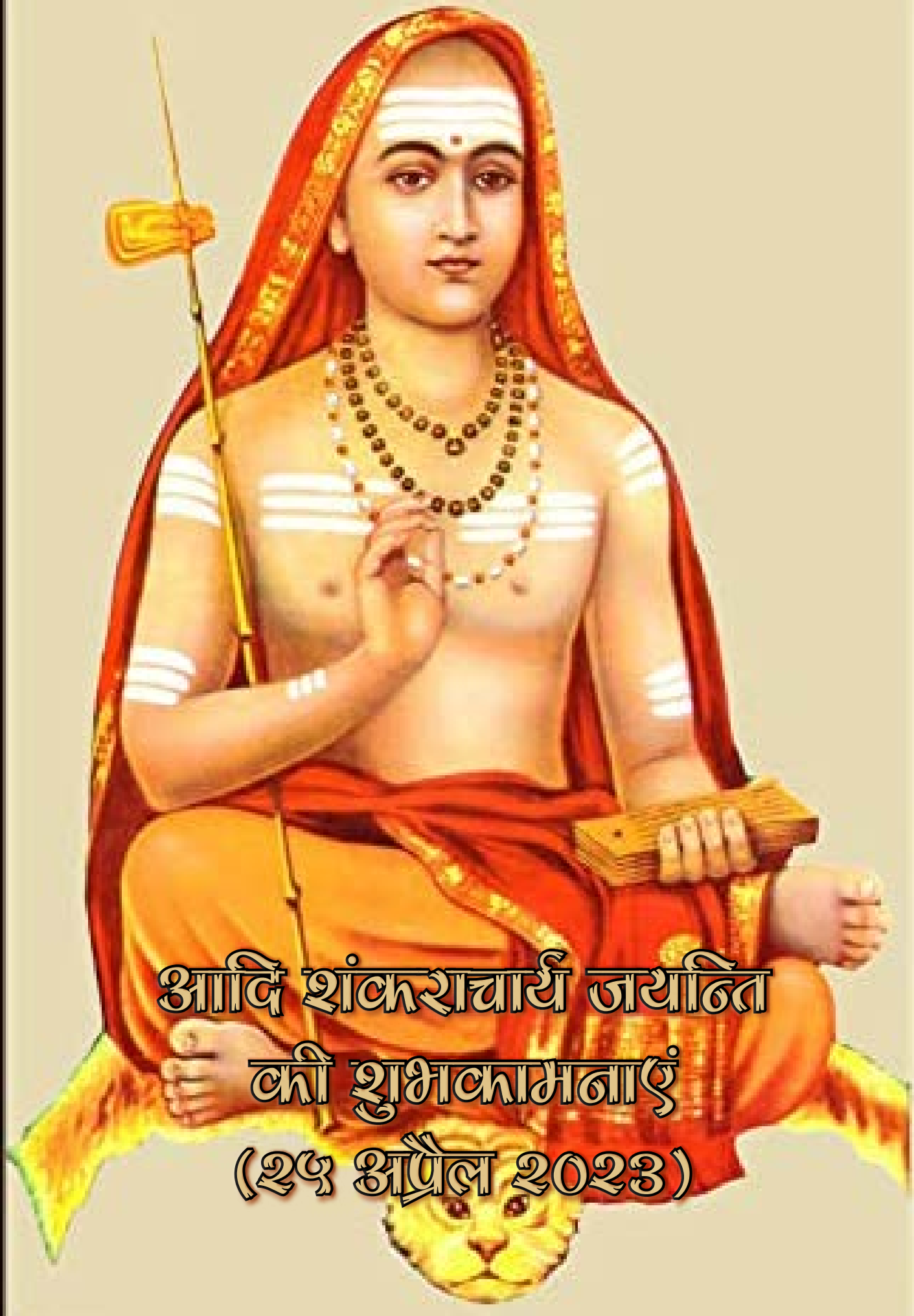
आदि शंकराचार्य जयन्ति
की शुभकामनाएं
(२५ अप्रैल २०२३)

वेदान्त लेख
अहं ब्रह्मास्मि

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्

समस्त शास्त्रों का उद्घोष है कि ज्ञानादेव तु कैवल्यम्'। अर्थात् ज्ञान से ही मुक्ति होती है। संसार का हेतु स्वस्वरूप के बारे में अज्ञान और उस वजह से की गई विपरीत धारणा है। उसके लिए वेदान्तशास्त्र का गुरुमुख से श्रवण किया जाना चाहिए। कई बार तीव्र मुमुक्षुत्व से युक्त होते हुए भी एक साधक दीर्घ काल तक श्रवणादि रूप प्रयास करता है, तथापि ऐसा लगता है कि हम वहीं के वहीं अटके हुए है। अभी भी मन में छोटापन की अनुभूति हो रही है। यहां न शास्त्र गलत है, न ही गुरु के द्वारा दिया जानेवाले ज्ञान में कोई दोष है। अतः विचारणीय है कि कहां पर गलती हो रही है !

हमारी अपने आप को जानने की यात्रा का आरम्भ अनेकों बार अपने बारे में अनुभवकर्ता के अभिमान से युक्त होकर होता है। यही नहीं बल्कि बाकी समस्त 'विषयों' की तरह आत्मा के अनुभव करने की अपेक्षा से युक्त होते है। हम अनुभवकर्ता हैं और हमें अनुभव करना है। हम पूर्व अवधारणा से युक्त होते है, तब ही हम अनुभूति की अपेक्षा कर रहे है। यह एक संसारी तरीका है। इससे आत्मा के यथावत साक्षात्कार की असम्भावना हो जाती है। निर्मल जिज्ञासा किसी प्रकार की पूर्व अवधारणापूर्वक नहीं होती है बल्कि उसमें अपनी अवधारणाओं का ही पुनरालोकन किया जाता है। यह सोच हो कि हम अनुभवकर्ता कैसे बने है? वह कौन से रहस्य हैं जिससे हम साधक बने हैं? इस भोक्ता, अनुभवकर्ता का मूल क्या है? अपने अनुभवकर्ता होने के बारे में संसारी में कभी विचार नहीं होता किन्तु इसकी पुष्टि मात्र ही होती है। अनुभवकर्ता बनकर स्थित होने के उपरान्त अनुभव करने की मनोकामना से युक्त रहते है। सम्भव है कि इसके तरीके भिन्न-भिन्न हो, किन्तु अनुभवकर्ता को स्वीकार करके ही उसके लिए व्यवस्था करता है। जिस समय भोक्तापन को हम स्वीकार करते हैं, उसके उपरान्त कुछ भी करते हैं वह संसारी तरीका है। यदि यह ही संसारी तरीका आत्मा के ज्ञान में प्रयोग करते हैं कि हमें मोक्ष चाहिए और उसके उपरान्त उसकी प्राप्ति के लिए व्यवस्था करते हैं। यह साधना ही संसारी तरीका है। वहां कुछ करना वा नहीं करना - दोनों कर्तृप्रधान चेष्टा हैं।

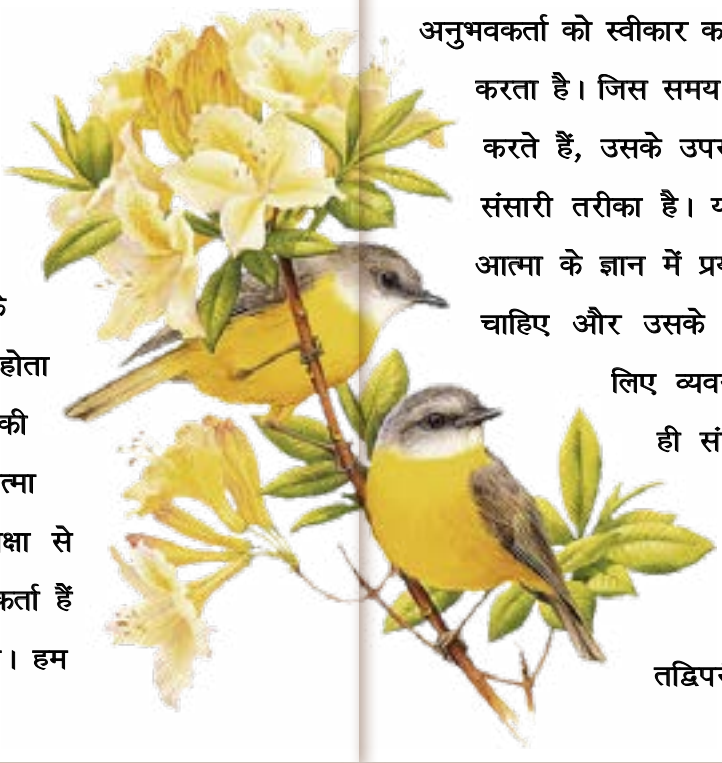

तद्विपरीत एक अन्य तरीका है,

ज्ञानादेव तु कैवल्यम्

जहां कोई प्रयास नहीं किन्तु भोक्ता के उपर विचार करें। वस्तुतः कर्तापन हम में नहीं है। कर्तापन मात्र उस प्रकार से है कि जैसे स्वप्न में हम कुछ चेष्टाएं करते हैं, जगने पर यह कल्पनामात्र सिद्ध होता है। मैं के अनेकों परिवेश यह बताते हैं कि हम में कर्तापन कल्पित है। क्योंकि इन कल्पित अस्मिताओं का सतत परिवर्तन हो रहा है। यह कर्तापन व भोक्तापन स्थायी परिचय नहीं है। यदि भोक्तापन स्थायी नहीं है तो भोक्तापन कैसे आता है? भोक्ता के रूप में कौन है? जहां भोक्ता बनकर स्थित हुए तो भोक्ता की संतुष्टि हेतु ही भोग के लिए प्रयास होता है। भोक्ता की सन्तुष्टि की चेष्टा ही संसारी तरीका है। भोक्तृत्व पर विचार शास्त्रीय तरीका है। प्रामाणिक ज्ञान के अभाव में भोक्ता का अस्तित्व बना रहता है। जैसे रस्सी न जानने की वजह से सर्प का अस्तित्व है, यह ही अध्यारोप है, मिथ्या है। यह बात समझने पर अपने कर्ता व भोक्तापन के रहस्य को जानने की दिशा में प्रेरणा जगती है। जगत के अस्थायित्व को देखकर मिथ्यात्व व असारता का निश्चय होने पर उसमें परिपूर्णता खोजने की यात्रा की समाप्ति हो जाती है। तथा अब न तो कल्पित वस्तु से अस्मिता बनाने का प्रश्न है और नहीं आज की अस्मिता को सत्य मानने का प्रश्न है। जिससे हमारी अस्मिता प्राप्त हो रही थी वो ही कल्पित है, एवं असार को असार जान कर सब का निषेध करके स्थित होते हैं। यहां भोक्ता को भोग से रोकने से भोक्ता का निषेध नहीं होता है। किन्तु भोक्ता के भोक्तृत्व को अनावश्यक जानना है। इस ज्ञान की वजह से भोक्ता अनावश्यक हो गया है। जहां जाननेवाला खतम हो गया है, उसे ही अध्यारोप का अपवाद कहते है। जहां इसका उपराम वहां दिव्य शान्ति है। यह प्रयास से नहीं किया गया, किन्तु भोक्ता के निषेध से होता है। हम बन्धन में है यह मोह समाप्त हुआ। वह निषेध की प्रक्रिया का प्रसाद है। जहां सब का निषेध वहां सत्य स्वतः प्रकाशित होता है। जो अपने बन्धनों को कल्पित जानकर उससे मुक्त होता है। शास्त्रोक्त तरीका इसी जीव अर्थात् कर्ता-भोक्ता के उपर विचार करना है, उसके मूल में जाते है। यह ही इस रहस्य को जानने का प्रामाणिक तरीका है। अन्य सब संसार का तरीका है। इसे ही ज्ञान कहते है, जिसमें अनुभूति की कोई अपेक्षा नहीं है। अतः ज्ञान से मुक्ति नहीं किन्तु ज्ञान ही मुक्ति है।

सा जिह्वा या शिवं स्तौति
तन्मतिं ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ
तौ हस्तौ तस्य पूजकौ।।

भावार्थ : धन्य है वह जिह्वा–जो परमात्मा का गुणगान करती है, वह मति – जो उनका ध्यान करती है, वह कर्ण–जो उनकी कथाश्रवण में विहार करते है तथा वह हाथ

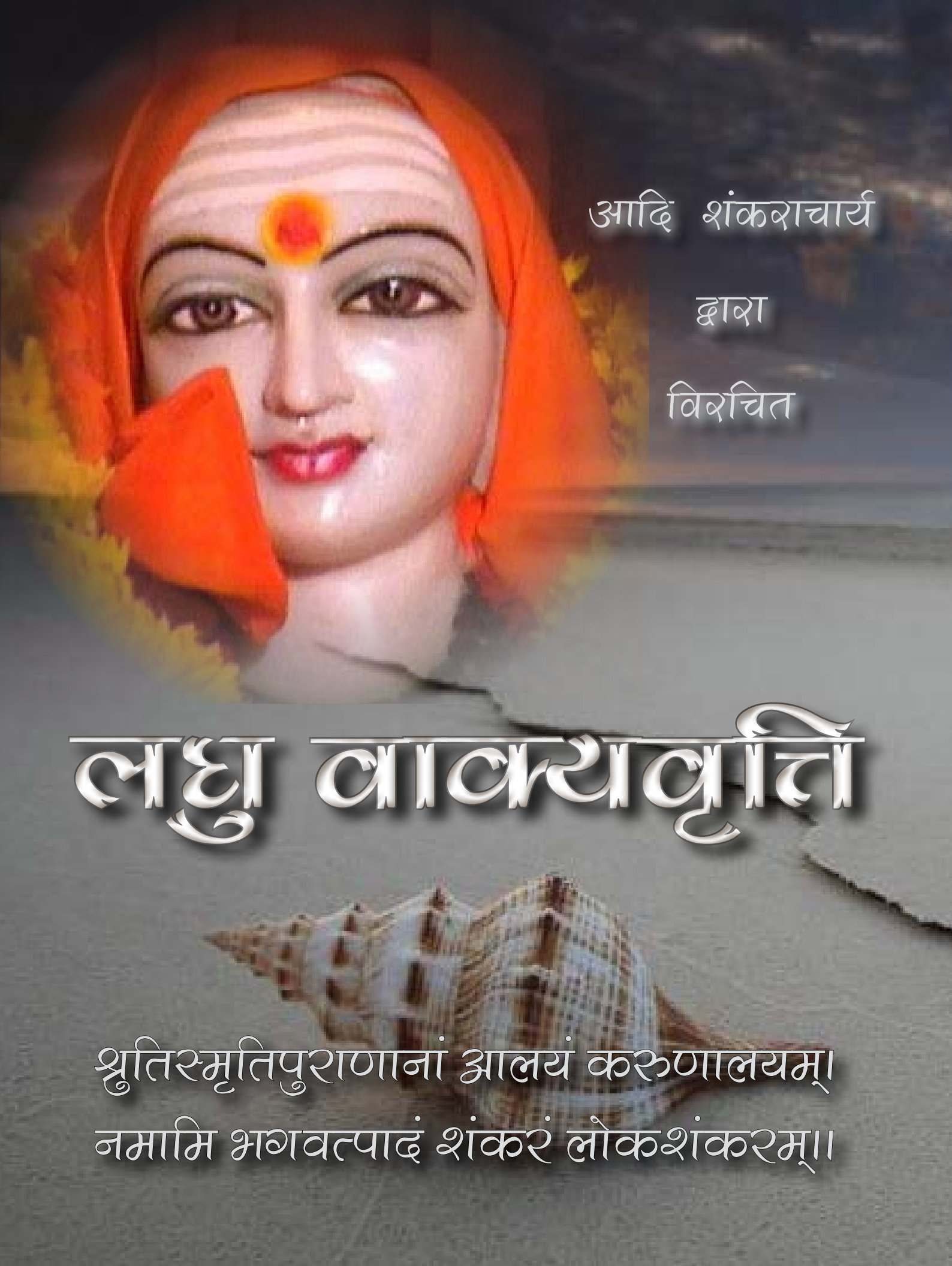
आदि शंकराचार्य
द्वारा
विरचित
लघु वाक्यवृत्ति
श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

श्लोक – १६

श्रद्धालुर्ब्रह्मतां स्वस्य
चिन्तयेद् बुद्धिवृत्तिभिः।
वाक्यवृत्त्या यथाशक्तिः
ज्ञात्वा ह्यभ्यस्यतां सदा।।

श्रद्धालु व्यक्ति अपनी ब्रह्मस्वरूपता के बारे में अपनी बुद्धि द्वारा चिन्तन करे, तथा इस वाक्यवृत्ति ग्रन्थ के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके यथाशक्ति सदा अभ्यास करें।

लघु वाक्यवृत्ति

पूर्व श्लोक में आचार्य ने बताया कि श्रद्धालु को ज्ञानियों की प्रिय समाधि का अभ्यास करते हुए अपनी ब्रह्मस्वरूपता का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिए।

इस श्लोक में भी आचार्य श्रद्धावान् को बता रहे हैं कि श्रद्धावान् व्यक्ति अपनी ब्रह्मस्वरूपता के बारे में बुद्धि द्वारा चिन्तन करें। अतः पहले यह जानना आवश्यक है कि श्रद्धा का क्या स्वरूप होता है? अध्यात्म के विविध सोपान पर साधक के लिए श्रद्धा के स्वरूप में भिन्नता होती है। तथा उन-उन धरातल की श्रद्धा की दृढ़ता ही प्रामाणिक ज्ञान से उसे आगे के सोपान पर ले जाती है। और श्रद्धा में भी और सूक्ष्मता आती है। जब कोई साधक कर्मक्षेत्र में विद्यमान है, उस समय उनके अन्दर ईश्वर के अस्तित्व, उनके कर्मफलदातृत्व, जगन्नियन्ता आदि रूप होने की श्रद्धा होनी चाहिए। यही श्रद्धा शास्त्रों के प्रामाणिक ज्ञान से ईश्वर के अभिन्न निमित्त उपादान कारणरूप होने में पर्यवसित होनी चाहिए। जैसे जैसे इस श्रद्धा में दृढ़ता होकर अध्यात्म का जिज्ञासु बनता है तो गुरु और शास्त्र प्रमाण से अपनी ब्रह्मस्वरूपता का निश्चय होता है। श्रवण से जीवभाव का निषेध होकर अपनी ब्रह्मस्वरूपता का ज्ञान होता है। अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा के अभाव में स्वयं को अपूर्ण, संकुचित मानकर जीव ही ज्ञान प्राप्त करता है। अर्थात् संकुचित जीव ही पूर्ण ब्रह्म बनने की चेष्टा मानों करता है। जब तक जीव बने रहकर प्रयास होता है, तबतक खण्ड, संकुचिता बनी रहती है और नए अनुभूति की अपेक्षा से युक्त अर्थात् भोक्तृत्व से युक्त बना रहकर प्रयास करता है, एवं कर्ता-भोक्ता जीव ही ब्रह्म प्राप्ति की चेष्टा करता है।

लघु वाक्यवृत्ति

अतः पहले अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा से युक्त होकर ही आगे यात्रा की जानी चाहिए। क्योंकि श्रद्धा ही ज्ञान में पर्यवसित होती है।

यहां यह भी ध्यान में लाने योग्य है कि बगैर ज्ञान के श्रद्धा क्षणिक भावनामात्र है। भावना भी मूलरूप से प्यासा, एक कर्ता-भोक्ता जीव ही करता है। उससे अस्थायीरूप से अहं ही सन्तुष्ट होता है। यह भी अखण्डता की अवस्था में जाग्रति का हेतु नहीं बनती है।

अतः आचार्य यहां बता रहे हैं कि अपनी बुद्धिवृत्ति द्वारा चिन्तन करें। और उसके लिए इस लघुवाक्यवृत्ति ग्रंथ का ज्ञान प्राप्त करके अभ्यास करें। ब्रह्मज्ञान के लिए साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही बताया जाता है। इसका अभिप्राय कि पहले शास्त्रप्रमाण से गुरुमुख से श्रवण किया जाना चाहिए। उससे अज्ञान का नाश किया जाता है, मनन से तद्विषयक संशय को दूर करते है। और निदिध्यासन में अपने अन्दर जो विपरीत भावनाएं आदतवशात् सिर उठाती है, उसे अभ्यासपूर्वक दूर किया जाता है। इस प्रकार अपनी ब्रह्मस्वरूपता के ज्ञान में निष्ठा होती है। शास्त्र श्रवण से आरम्भ करके समस्त साधना अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा के साथ की जाती है। इस प्रकार सतत अभ्यास करने के द्वारा जीवभाव का निषेध होकर अपनी ब्रह्मस्वरूपता में निष्ठा होने लगती है। अतः साधक अपनी पूर्णस्वरूपता की श्रद्धा से युक्त होकर इस ग्रंथ का अच्छी प्रकार श्रवण करके उसका अभ्यास करें।

परिस्थिति-सापेक्ष अनुकुलता की खोज ही संसार है,
परिस्थिति-निरपेक्ष अनुकुलता समत्व का हेतु है।

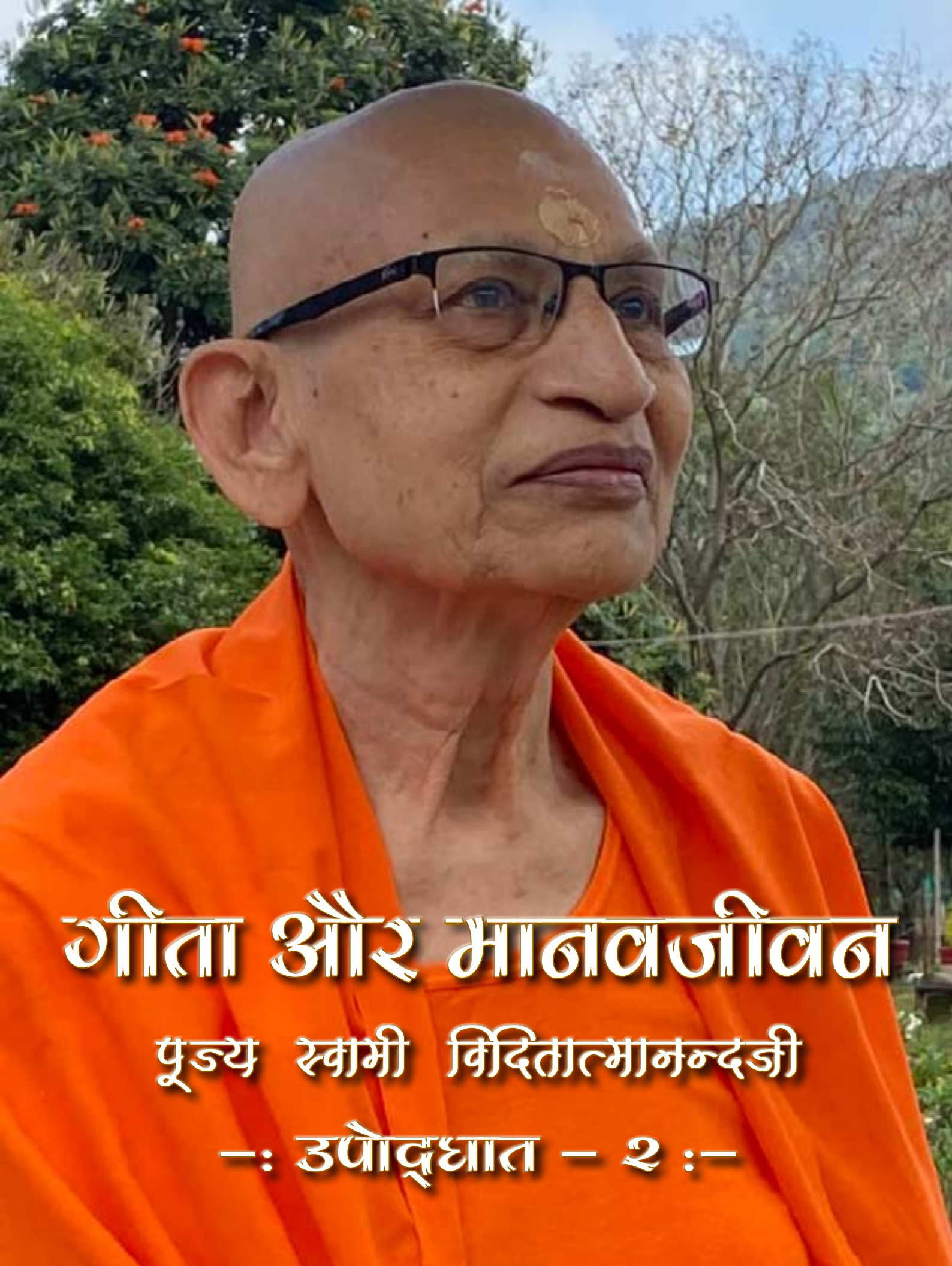

गीता और मानवजीवन

पूज्य स्वामी विदितात्मानन्दजी

–: उपोद्घात – २ :–

गीता और मानवजीवन

अन्तर की आवाज :

जगत में प्रत्येक वस्तु की प्रवृत्ति अस्वाभाविक परिस्थिति से स्वाभाविक परिस्थिति की और गति करने की होती है। जिस प्रकार नदी – अपने उद्गमस्थान–समुद्र से पृथक् हो गई, किसी कारणवश समुद्र का जल शोषित हुआ, उसमें से बादल निर्मित हुए, फिर किसी दुर्गम पर्वत वा प्रदेश में उसकी वर्षा हुई। इस प्रकार अपने मूल उद्गमस्थान से जल विलग हो गया है। दोनों के मध्य में दूरी हो गई है। क्या जल इस अन्तर को सह पाता है? नहीं, उसको अवसर प्राप्त होते ही वह बहने लगता है। कहां? समुद्र की और! शनैः शनैः वह प्रबल वेग धारण कर लेता है, प्रचण्ड बलशाली हो जाता है और मार्ग में आनेवाले अवरोधों को दूर करने की शक्ति से युक्त होता है। अपने उद्भवस्थान को प्राप्त करने के लिए बल की, तत्परता की व उत्साह की आवश्यकता है। श्रुति बताती है कि निर्बल मनुष्य आत्मा को अर्थात् अपने मूलस्वरूप को प्राप्त नही कर सकता है। यदि नदी अवरोध के प्राप्त होने पर हिम्मत हार जाए और वहीं रुक जाए तो वह अपने ध्येय को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकती। किन्तु ध्येय को पाने की इतनी प्रबल इच्छा व उत्साह है कि कैसे भी अवरोध आने पर उन सब का वह सामना करके अन्ततः अपने मूलस्वभाव को प्राप्त करती है।

मनुष्य का भी कुछ ऐसा ही है। मनुष्य भी अपने मूल स्वभाव से मानो विलग हो गया है। जब चारों ओर स्वार्थ, अनैतिकता, क्रूरता, निष्ठुरता, संकुचिता आदि दुर्गुण दृष्टिगोचर होते है, तब हमें शायद ऐसा लगें कि आजकल का मनुष्य ऐसा ही होता है। किन्तु क्या मनुष्य स्वाभाविकरूप से अनैतिक है? अधर्मी है? स्वार्थी है? नहीं! मनुष्य के ऐसे व्यवहार के बावजूद एक आशा की किरण विद्यमान है कि वह स्वभाव

गीता और मानवजीवन

से ऐसा नहीं है। स्वभाव से वह इमानदार है, सत्यनिष्ठ है। अहिंसा ही उसे प्रिय है। फिर यह प्रश्न होता है कि क्यों वह झूठ का आश्रय लेता है? क्यों दूसरों की हिंसा करता है? क्यों अन्य को हानि पहुचाता है? अपने ध्येयसिद्धि की उत्कण्ठा में अन्य के प्रति क्यों संवेदना नहीं रखता? अपने ध्येयसिद्धि के प्रयास में अनेकों को हानि पहुंचे, नुकसान हो, उसकी चिन्ता क्यों नहीं करता होगा? बस की लाइन में धक्के मार के, दूसरों को गिराकर खुद बैठक प्राप्त करना क्यों चाहता है? यह सब इसलिए करता है क्योंकि उसे अन्य तरीके ज्ञात नहीं है। यदि अनैतिक आचरण करता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे अनैतिकता प्रिय है। किन्तु उससे भिन्न कौनसा तरीका अपनाए, उसका उसे पता नहीं है। जो अन्य की हिंसा करता है, उसे भी पता है कि जिस प्रकार स्वयं की हानि होने से दु:ख होता है – वह उसे पसंद नहीं है, वैसे ही अन्य को दु:ख वा हानि पहुंचे वह अन्य को भी पसंद नहीं होता है। फिर भी अन्य को हानि पहुंचाता है, यही दिखाता है कि अहिंसा का पालन क्यों करना चाहिए – उसका उसे पता नहीं है।

इस प्रकार ज्ञान या विवेक के अभाव के कारण ही मनुष्य जीवन के मूल्यों का त्याग करता है। मानों कि मनुष्य अत्यन्त बहिर्मुख, क्रूर, निष्ठुर और संवेदनाविहीन बन गया हो, ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु वस्तुत: ऐसा नहीं है अर्थात् जीवन में निराशा का कोई स्थान नहीं है। कई लोग पूछते हैं कि, 'स्वामीजी! क्या ऐसा भी कोई दिन आएगा कि मनुष्य या राष्ट्र में से अनैतिकता दूर हो जाएगी? हमारा देश कब सुधरेगा? सुधारना ही पडेगा। नैतिकता ही आत्मा का स्वरूप है, यही जीवन की संवादिता है, और यही मनुष्य को आकर्षित करती है, न कि अनैतिकता। आज नहीं तो कल, मनुष्य का जो मूलभूत स्वभाव है, वह किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव जमाएगा ही! प्रश्न होता है, 'किन्तु स्वामीजी! जिस मनुष्य को किसी प्रकार की शिक्षा नहीं है, किसी प्रकार का ज्ञान नहीं है, क्या सही और क्या गलत, उसकी लेशमात्र

गीता और मानवजीवन

भी समझ नहीं है, वह कैसे सुधरेगा?' इस जगत में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसे भगवान ने ज्ञान न दिया हो! भगवान ने यह ज्ञान सब को देकर ही भेजा हैं कि मुझे जीना है और सुखपूर्वक जीना है। उसी प्रकार अन्य को भी सुखपूर्वक जीना है। ऐसा ज्ञान किसको नहीं है? इसके अलावा मैं यह भी जानता हूं कि जिस प्रकार हमारे सुख की खोज में कोई व्यवधान बने यह हमें पसंद नहीं है, वैसे ही अन्य के सुख में हम व्यवध ाान बने तो उसे भी अच्छा नहीं लगेगा।

इस प्रकार जिसे हम अन्तरात्मा की आवाज कहते हैं, वह प्रत्येक मनुष्य को भगवान ने दी हुई है। जो कि हमें स्वभाव के विपरीत जाने से रोकती है। किन्तु हमारे हृदय में इतना शोर है कि हम अन्तारात्मा की आवाज सुन नहीं पाते हैं। हृदय के अन्य शोर को दूर कर सकें तो आत्मा की आवाज स्पष्टरूप से सुन सकेंगे। भगवद्गीता हमें इस विषयक स्पष्ट मार्गदर्शन देती है।

भगवान के द्वारा प्रत्येक मनुष्य को प्रदत्त अन्तरात्मा की आवाज को अनेक प्रकार के आन्तरिक शोर के कारण नहीं सुन सकते हैं। रेडियो पर हमें कोई दूर का स्टेशन पकडना हो, करांची स्टेशन पर सुन्दर गानें चल रहे है, उस स्टेशन को हमें पकडना है – किन्तु अन्य स्टेशनों की इतनी सारी आवाज आती है कि हम उस स्टेशन को सुन नहीं पाते है। यदि अपने पास अच्छा रेडियो होता तो बहुत अच्छी तरह से ट्युनिंग करके उस स्टेशन को सुन पाते। वैसे ही, अपनी अन्तरात्मा की आवाज निश्चितरूप से है, कोई भी मनुष्य उससे वंचित नहीं है। किन्तु हृदय में इतनी सारे कामनाएं, राग, द्वेष आदि का शोर है कि यह जो स्वाभाविक पुकार है, उसे सुन ही नहीं पाते है। किन्तु कभी कभी प्रत्येक मनुष्य को यह सुनाई देता है। अति आवेग के कारण मुंह से कुछ अपशब्द निकल जाए, कुछ गलत काम हो जाए, तो जब आवेग शान्त होता है तब अन्दर से कोई मानों हमें बताता है कि यह अच्छा नहीं हुआ। उसके उपरान्त खुद को पश्चात्ताप की, अपराध की भावना होती है। यह ही दीखाता है कि हमें शिक्षा देनेवाला कोई अन्दर विराजमान है।

जीवनमुक्त

– 32 –

उत्तरकाशी

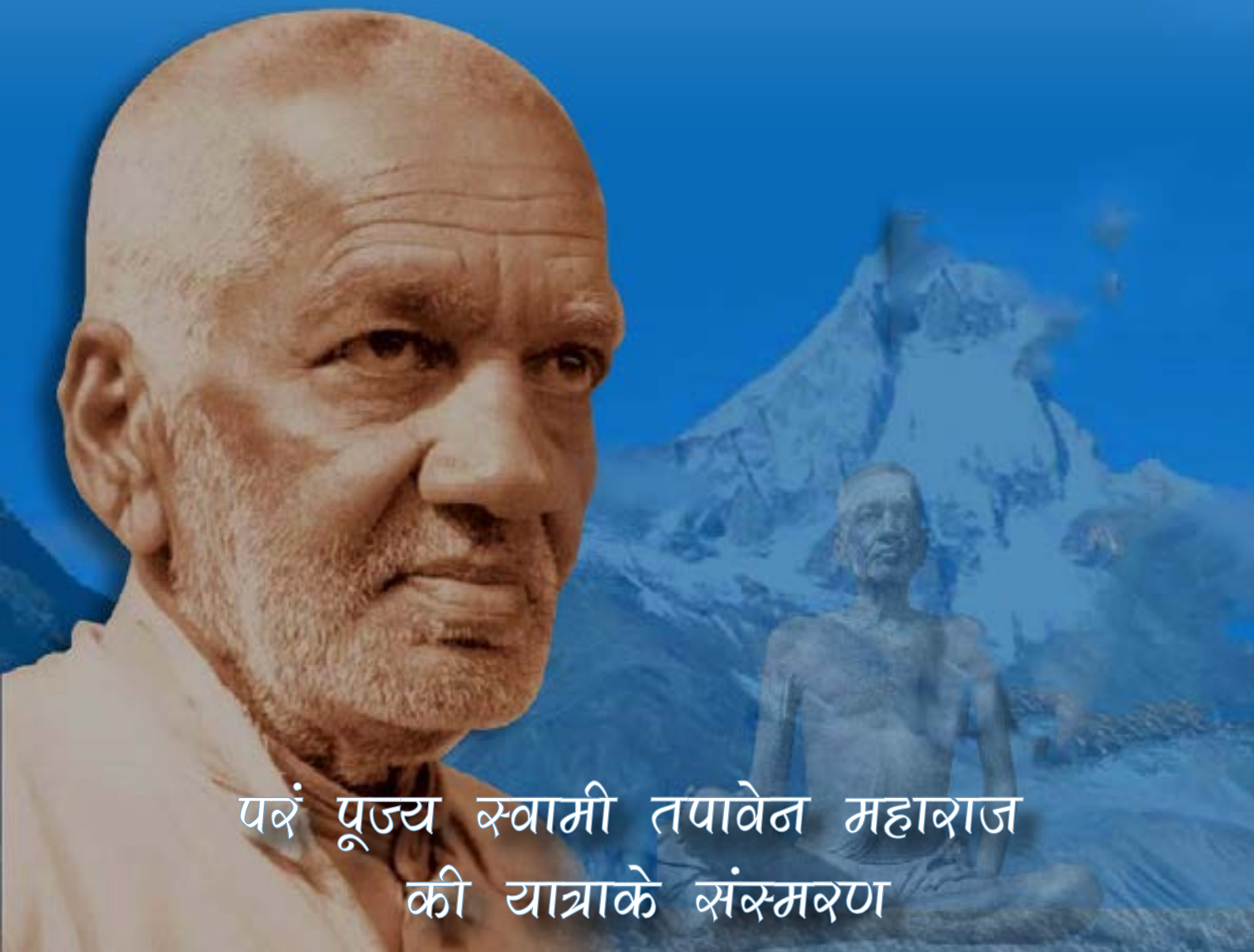

परं पूज्य स्वामी तपोवेन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त

पर्वतीय जनता की अपने ग्रामदेवता में श्रद्धा और भक्ति अनन्य साधारण तथा अत्यन्त दृढ है। किन्तु उनकी श्रद्धा भक्ति कामनाओं से परिपूर्ण है। विचारशक्ति और विद्या-बल से हीन इन पहाडी लोगों ने यह सपने में भी नही जाना है कि निष्काम प्रेम कौन सा है? संपत्ति पाने तथा विपत्ति को दूर करने के वास्ते वे देवताओं के सामने प्रार्थना करते और रोते दिखायी देते है। इस प्रकार ग्रामदेवता और कुलदेवता में असीम श्रद्धा-भक्ति केवल हिमालय में नही हिमवत्-सेतु पर्यन्त भारतवर्ष में किसी न किसी तरह थोडी बहुत सर्वत्र फैली दिखायी देती है। लेकिन अंतर केवल इतना है कि मैदानी प्रदेशों में नवीन परिष्कृति के साथ साथ उनकी जैसी क्षति होती दिखायी देती है, वैसी हिमालय में उनकी क्षति नही हुई है। शास्त्र ज्ञान से होने वाली विचारशक्ति से न सही, केवल परंपरागत संस्कृति के कारण ही सही, तो भी देवता में ऐसी दृढ श्रद्धा-भक्ति का होना प्रशंसनीय ही है। क्योंकि ईश्वर ही सर्व नियंता है; ईश्वर ही सर्व फलदाता है; ईश्वर की सहायता के बिना हमारे लिए खाना सोना भी असंभव है। ईश्वर की आज्ञा से ही बादल बरसते है; नदियाँ बहती है; पेड पौधों पर फल लगते है। ईश्वर की आज्ञा से ही एक मानव सुख भोगता है तो दुसरा दु:खी होता है। इस स्थिति में अपने देवता को ईश्वरीयरूप में देखनेवाले पहाडी लोग उस देवता में सर्वशक्ति और सर्व नियंतृत्व की कल्पना करें तो वह शास्त्रविहित ही है।

उस गाँव से निकलकर, चुँकि तीन चार मील तक खुला मार्ग है, इसलिए वहा तक चलकर हमने वहाँ वनांतर में ही विश्राम किया।

जीवनमुक्त

अब यहाँ से उपर का मार्ग बडे संकट और विषमता का है। देहाभिमान को छोडे हुए ज्ञानीवर या वीरवर व्यक्तियों को छोडकर अथवा फिर भूत भावियों की चिंता करनेवाले पशु समान मनुष्यों को छोडकर और कोई व्यक्ति यहाँ से उपर चढ़ने का साहस नही करेगा। हम इनमें से चाहे किसी भी वर्ग के भले हों या न हों, पर हम सुबह ही वहाँ से उठकर उत्साह के साथ चल पडे। अब यहाँ से छः सात मील कठिन चढाई के पहाड पर चढते जाना है। रास्ता हैं ही नही। चारों ओर पौधों लताओं और वृक्षों वनस्पतियों से भरा पूरा घना अंधकारमय गंभीर वन है। हमारे सहचारियों में पहले इस रास्ते पर चलने वाला एक धीरप्रकृति का व्यक्ति हाथ में आयुध ले कर, जहाँ तक हो सके, पौधों, झाडियों तथा वृक्षशाखाओं को काटते हुए हमारे आगे आगे चला। हम तो अपने पैरों के आगे ही दृष्टि तथा चित्त को एकाग्र करते हुए बडी सावधानी के साथ उन का पीछा करते गये। विषैले पौधों से टकराकर हमारे पैर सूजते गये। कंटीले पौधों से लगकर पैरों से रक्त बहने लगा। हमारे कपडों में एक तरह के कंटीले पत्ते और बीज लग जाते। इस प्रकार वृक्ष शाखाओं को पकडकर बैठते चलते, झुकते सरकते तथा कंकडों, कांटों से होकर चलते चलते हम ग्यारह बजे के पहले पर्वत शिखर पर पहुँच गये। विषैली हवा के लगने से एक महात्मा का सिर चकराया और वह गिर पड़े। अतः उनकी शुश्रुषा में कुछ समय बिताना पडा।

बारह बजे खाना पका कर खाया और फिर यात्रा शुरू की। वहीं शैल शिखर पर एक विशाल तथा वृक्षादि से रहित थोडा सा खुला एक मैदान मिला। छोटे छोटे पौधों में तरह तरह के रंग बिरंगे खिले हुए फूलों से भरा मैदान इतना ही रमणीय था। बीस हजार फुट से अधिक उँची 'श्रीकण्ठ', और 'वानरपुच्छ' नामक हिमालय की दो मशहुर चोटियाँ कभी न पिघलनेवाली हिमसंहिता के साथ धवल धवल सी यहा पास ही पूर्वोत्तरी दिशा में दिखायी देती है। इन हिमाच्छादित पर्वत श्रृंगों के सौन्दर्य का मैं कहां तक वर्णन करूं?

एक फूल की रंग-बिरंगी पंखुडियों ने,
उंगलियों से अपनी सूरज को है छूआ।
सूरज ने बिखरा दिया अपना समस्त उजाला उस पर,
जैसे उसे जीवन मिल रहा हो खुशनुमा हवा भर।
उसकी आंखों में बढ़ी थी चाहत कि,
वह सूरज की किरणों को नशा करता जाएं।

सूरज ढलते ढलते अपना उजाला छोड गया,
फूल ने भी सोने की डिबिया खोल समेट लिया।
फिर से नई उमंगों से भरा फूल उठ खड़ा हो गया,
उसकी खुशियां नए संगीत से सब के मन को भर रहा।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

मनु और दशरथजी का चरिंग

– ०१ –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।

श्री मनु और दशरथ चरित्र

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दुधर्म की अपूर्वता है, इसलिए किसी व्यक्ति के चरित्र पर विचार करते हुए उनकी दृष्टि केवल वर्तमान पर ही नहीं होती। किसी के भी व्यक्तित्व को पूरी तरह हृदयंगम करने हेतु उसके भूतकाल पर भी दृष्टि रखनी होगी, ऐसी उनकी मान्यता है। एक ही देश, काल, परिवार में जन्म लेने पर भी व्यक्ति में दिखाई देनेवाली विभिन्नताओं की व्याख्या पुनर्जन्म के सिद्धान्त के आधार पर ही की जाती है। व्यक्तिका अन्तर्मन अगणित जन्मों के संस्कारों से घिरा होता है। व्यक्ति के स्वभाव और आचरण के मूल में पूर्वजन्मों के संस्कार ही प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। महाराज दशरथ के व्यक्तित्व की व्याख्या के लिए भी इसी पद्धति का आश्रय लेना आपेक्षित है। मानस के प्रथम सोपान में इसी तथ्य को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है कि वे श्री मनु ही हैं, जो आगे चलकर दशरथ के रूप में जन्म लेते हैं। मानस में सर्वप्रथम नर-सृष्टि के विस्तारक के रूप में उनका परिचय दिया गया है। मनु मनुष्यजाति के आदिपुरुष हैं। मनुष्य शब्द की मूल व्युत्पत्ति भी मनु शब्द से सम्बद्ध है। इस तथ्य को हृदयंगम करने के लिए सृष्टि के विस्तार की उस प्रक्रिया पर ध्यान देना होगा, जिसका वर्णन विविध पुराणों के अनेकानेक प्रसंगों में किया गया है। इस सृष्टि का श्रीगणेश जब 'कुछ नहीं' था, तब क्षीरसागर में शेषशया पर शयन करते हुए भगवान नारायण के चित्र से होता है। अगाध जलराशि में नारायण शयन कर रहे हैं। उनकी नाभि से एक कमल निकलता है और उस कमल से ब्रह्मा का जन्म होता है। ब्रह्मा स्वयं को उस अगाध जलराशि में अकेला पाते हैं। वे जिस कमल पर आसीन थे, उसके नाल का मूलकेन्द्र उनके दृष्टिपथ से बाहर था। वे अकेलेपन के भय और अभाव का अनुभव करते हैं, और तब उन्हें एक स्वर सुनाई देता है जिसमें उन्हें सृष्टि के निर्माण का आदेश प्राप्त होता है। हजारों वर्षों की तपस्या के पश्चात् वे सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं। इस प्रक्रिया का एक भाग मानवजाति का निर्माण और विस्तार भी था। इसके मूल घटक मनु हैं। पौराणिक परम्परा का यह चित्र जीवन के जिस सत्य का उद्घाटन करता है, इसे हृदयंगम करने

श्री मनु और दशरथ चरित्र

हेतु इस प्रतीकात्मक उपाख्यान के अन्तरंग में प्रविष्ट होना होगा।

जब सृष्टि के आदिकाल की कथा कही जाती है, तब उसका तात्पर्य यह नहीं होता कि उससे पहले सृष्टि थी ही नहीं। संसार अनादि है। उसमें सतत निर्माण और विनाश की प्रक्रिया चलती रहती है। इसे स्पष्ट करने के लिए क्षीरसागर में शेषशया पर शयन करते हुए भगवान् नारायण का चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक व्यक्ति जब निद्रा-निमग्न होता है, तब उसकी दृष्टि में कोई सृष्टि नहीं होती है। निद्रा अद्वैत की वह स्थिति है, जो व्यक्ति के जीवन में प्रतिदिन आती है, और उसमें एक दिन का भी व्यवधान व्यक्ति को व्याकुल बना देता है। निद्राकाल में व्यक्ति परं शान्ति का अनुभव करता है। अनिद्राकाल की व्याकुलता उसके वास्तविक मूल्य को प्रकट करती है। साधारणतया प्रलय की कल्पना से व्यक्ति आतंकित हो उठता है किन्तु यह प्रलय भगवान का शयन ही तो है। निद्रा की यह अद्वैत स्थिति भी सार्वकालिक नहीं होती। व्यक्ति सोते समय जागरण का संकल्प लेकर ही सोता है। इस तरह 'कुछ नहीं' की स्थिति में भी यह 'सब कुछ' को साथ लेकर सोता है। व्यक्ति के जीवन का यह सत्य ही समष्टि के स्वरूप को प्रकट करता है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यह स्वभाव व्यक्ति को समष्टि चेतना से उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ है। भगवान विष्णु समष्टि चेतना के प्रतीक हैं। अद्वैत और द्वैत उस चेतना के दो पक्ष हैं। उसमें श्रेष्ठता और निकृष्टता की कल्पना व्यर्थ है। यह तो व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर है कि वह इन दोनों में से किस एक को अधिक महत्व दे। ब्रह्मा ने भी प्रारम्भ में जिस मनोमयी सृष्टि का सृजन किया उसमें यह प्रश्न उभरकर सामने आया। उनकी मानससृष्टि से जन्म लेनेवाले अधिकांश व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें द्वैत के विस्तार की तुलना में अद्वैत ही अधिक प्रिय था। इन्हें लोगों ने निवृत्तिपरायण महापुरुषों के रूप में देखा। तब सृष्टि के विस्तार हेतु नारी और पुरुष के शरीर की आवश्यकता का अनुभव हुआ। मन की समग्र शान्ति यदि अद्वैतस्थिति में सम्भव है तो शरीर के संरक्षण के लिए द्वैत की आवश्यकता है। ब्रह्मा जब सृष्टि का सृजन करने चलते हैं तब वे शरीर को अधिक महत्व दें, यह उनके लिए स्वाभाविक ही था। अतः मानव जाति के रूप में जिस अद्भुत सृष्टि को बनाना चाहते थे, उसके मूल घटक मनु को जो गौरव प्राप्त है, वह युक्तिसंगत ही है।

पौराणिक गाथा

विदुषी मैत्रेयी

विदुषी मैत्रेयी

भारत के इतिहास में अनेकों विदुषी स्त्रीरत्न का उल्लेख होता है। वैदिक काल में भी अनेकों वेदऋचाओं को प्रदान करनेवाली विदुषी स्त्रियां थी। उसमें एक एक प्रसिद्ध विदुषी मैत्रेयी थी। प्रसिद्ध मन्त्र 'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।' भी मैत्रेयी की ही देन मानी जाती है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियां थी।

1. मैत्रेयी और
2. कात्यायनी।

कात्यायनी गृहकार्यों तथा सांसारिक, अनेकों लौकिक विद्याओं में भी अत्यन्त कुशल थी। मैत्रेयी भी उतनी ही कार्यदक्ष थी।

याज्ञवल्क्य ऋषि के पास अपार समृद्धि थी। वे अत्यन्त विद्वान् थे, उनसे राजा जनक जैसे अनेकों राजाओं ने विद्या प्राप्त करके अपार धनराशि, गौ, जमीन आदि सम्पत्ति दान-दक्षिणा में प्रदान की थी। अध्यात्मज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने तीनों गृहस्थादि आश्रम के कर्तव्यों का भी अच्छी तरह निष्पादन किया। उसके उपरान्त आयु की अन्तिम अवस्था में उन्होंने संन्यास लेने का निश्चय किया।

अतः उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों को पास बुलाकर कहा, 'हमारी समस्त सम्पत्ति का तुम दोनों के मध्य में समान रूप से बटवारा करके मै स्वयं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूं।

कात्यायिनी पति की आज्ञाकारी थी। उन्होंने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। किन्तु मैत्रेयी सोच में पड़ गई। महाराज को ऐसा कौनसा धन प्राप्त है, जिस वजह से इन समस्त सम्पत्ति को तुच्छ समझ कर

विदुषी मैत्रेयी

उसका उसी प्रकार त्याग कर रहे हैं, जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली को सहजता से त्याग देता है। हमें उसी धन की प्राप्ति करनी है। इसलिए उन्होंने याज्ञवल्क्य से पूछा कि, 'महाराज! आपके पास ऐसा कौनसा धन है, जिससे युक्त होनेपर आप इस समस्त लौकिक सम्पत्ति को तुच्छ समझकर त्याग रहे हैं?' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'वह आत्मज्ञान है-जो आत्मकल्याण का हेतु है व जिससे अमृतत्व की सिद्धि होती है। यह सुनकर मैत्रेयी की जिज्ञासा और तीव्र हो गई, उसने पूछा कि, क्या यह धन-सम्पत्ति से आत्मकल्याण सम्भव नहीं है?' उस पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि, 'नहीं! उससे लौकिक-सुख सुरक्षा की अवश्य सिद्धि होती है, किन्तु अमृतत्व की सिद्धि नहीं।' यह सुनकर मैत्रेयी में तीव्र जिज्ञासु व मुमुक्षु जाग्रत हो उठा। और उन्होंने उसी क्षण समस्त धन-सम्पदा का त्याग कर दिया और कहा, 'येन नाहं अमृतः स्याम्। तेनाहं किं कुर्याम्?' हे स्वामी! जिससे अमृतत्व की सिद्धि नहीं हो सकती है, उसे लेकर हम क्या करेंगे? हमें तो वो आत्मज्ञान ही चाहिए।'

ऐसा कहकर मैत्रेयी श्री याज्ञवल्क्य के चरणों में गिर पड़ी और उनके प्रति शिष्यत्व से युक्त होकर शरणागत हो गई। तब याज्ञवल्क्य ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और शरणागत मैत्रेयी को शिष्यवत् स्वीकार करके उन्हें आत्मज्ञान प्रदान किया। उसके उपरान्त वे संन्यास लेकर चले गएं। मैत्रेयी ने भी ऋषि याज्ञवल्क्य का अनुसरण किया और संन्यास धारण कर लिया। यह प्रसिद्ध याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद बृहदारण्यक उपनिषद् में प्राप्त है।

ऐसी अनेकों महान आत्मज्ञानी, विदुषी स्त्रियां वैदिक काल में हुआ करती थी।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

पूज्य गुरुजी का जाजू परिवार द्वारा वैदिक विधि-विधान से स्वागत

आश्रम समाचार

गीता ज्ञान यज्ञ - मराठ़वाड़ा इन्फो-टेक, औरंगाबाद

आश्रम समाचार

गीता ज्ञान यज्ञ - अध्याय ६

आश्रम समाचार

पूज्य गुरुजी द्वारा ध्यान योग पर प्रवचन

आश्रम समाचार

गीता ज्ञान यज्ञ - प्रवचन हॉल

आश्रम समाचार

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम में गीता कक्षा

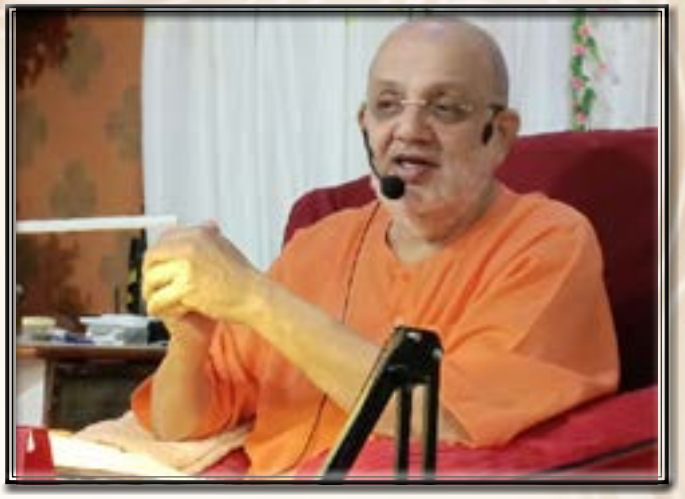

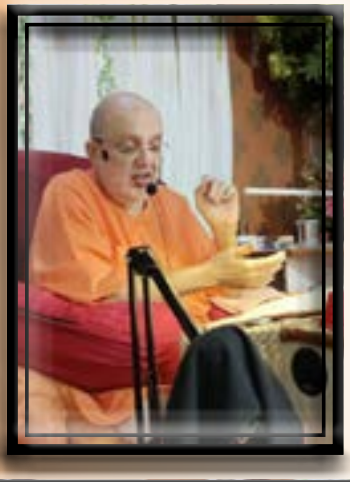

आश्रम समाचार

गीता कक्षा - प्रथम अध्याय समापन

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम में साप्ताहिक गीता कक्षा

आश्रम समाचार

गीता ज्ञान यज्ञ, जलगांव

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव अभिषेक

आश्रम समाचार

उंधियु भोज (केतनभाई दसाडिया)

आश्रम समाचार

गुजरात का विशेष व्यंजन - उंधियुं

आश्रम समाचार

खगीय विभूति

आश्रम समाचार

इन्दौर के पक्षीवृन्द

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

श्रीमद् भगवद् गीता

(शांकर भाष्य समेत) नित्य कक्षाएं

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

श्रीमद् भगवद् गीता

साप्ताहिक कक्षाएं / प्रति शनिवार

वेदान्त आश्रम, इन्दौर

पूज्य स्वामिनी अमितानन्दजी

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

~ Gita Ch. 12

~ Gita Ch. 17

~ Sadhna Panchakam

~ Drig-Drushya Vivek

~ Upadesh Saar

~ Atma Bodha Pravachan

~ Sundar Kand Pravachan

~ Prerak Kahaniya

~ Ekshloki Pravachan

~ Sampoorna Gita Pravachan

~ Kathopanishad Pravachan

~ Shiva Mahimna Pravachan

~ Hanuman Chalisa

~ Laghu Vakya Vrittu (Guj)

~ Gita Ch. 5 (Guj)

~ Gita Upodghat Bhashya (Guj)

Vedanta Ashram YouTube Channel

Vedanta & Dharma Shastra Group

Monthly eZines

~ Vedanta Sandesh - Apr '23 / ~ Vedanta Piyush - Mar '23

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Join us on Facebook :
Vedanta & Dharma Shastra Group

Published by:
Vedanta Ashram, Indore

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati